शूद्र और उनकी सामाजिक–आर्थिक स्थिति पर इस्लाम का प्रभावः एक अध्ययन

डा0 श्वेता गुप्ता*

प्राचीन काल में प्रत्येक ऐसा कार्य जो ब्राह्मण का विशेषाधिकार होता था, वह शूद्रों के लिए निषेध था। जैसे–वेद पढ़ना, होम करना और न कोई उनके सामने वेद पढ़ सकता था। शूद्र वेदों का अध्ययन नहीं कर सकते थे। अध्ययनों से ज्ञात होता है कि पूर्व मध्यकाल की अन्तिम दो शताब्दियों में भी शूद्रों की सामाजिक स्थिति में कोई मूल परिवर्तन नहीं आया। अलबीरूनी भी शूद्रों को द्विजों का दास मानता है। श्रीहर्ष भी शूद्रों को वेदाध्ययन और वैदिक संस्कारों के लिए अयोग्य बताता है। उपरोक्त निषेधों के बावजूद शूद्रों की धार्मिक, आर्थिक और सामाजिक स्थिति परिवर्तित और उन्नतशील होने के प्रमाण मिलते है।

सामंतवादी व्यवस्था के कारण शूद्रों के हाथों में कृषिकर्म, पशुपालन, शिल्प तथा अनेक व्यवसाय आ गयें। अतः समाज का एक आवश्यक वर्ग हो जाने से उनका सामाजिक स्तर उन्नतशील हो गया था। तत्कालीन कृषि प्रधान समाज में एक ओर तो भू स्वामियों की विभिन्न श्रेणियां थी वही दूसरी ओर सामान्य कृषक, जिनके पास छोटे–छोटे भूखण्ड थे, आश्रित कृषक वर्ग, हल जोतने वाले तथा खेतिहर मजदूर आदि थे। ऐसी स्थिति में कृषि कर्म को शूद्रों के लिए निधार्रित कर दिया गया। शूद्रों के लिए औद्योगिक कलाओं को भी आवश्यक माना गया। परिणामतः शूद्र सामान्य कृषक, खेतिहर मजदूर, कामगारों के रूप में अस्तित्व में आया। जो अपने स्वामियों के लिए कार्य करते थे। अतः उनकी आर्थिक स्थिति सुधरी और शूद्रों और वैश्यों के मध्य पेशे के सन्दर्भ में अधिक गतिशीलता बढ़ी।

मेधातिथि बताता है कि शूद्र वर्ण पूर्णतः स्वतन्त्रता का उपभोग कर रहे थे। उन्हें दास नहीं बनाया जा सकता था और वे अन्य तीन वर्णों पर आश्रित नहीं थे। इसके अतिरिक्त उन्हें व्यक्तिगत सम्पत्ति रखने का अधिकार भी था और वे वैदिक मंत्रो के उच्चारण के बिना संस्कारों का भी निर्वाह कर सकते थे। अपरार्क इन्हें सामाजिक महत्व देते हुए कहता है कि एक ब्राह्मण मकान मालिक को विपत्ति के समय चार लोगों से दिया हुआ भोजन ग्रहण करना चाहिए। प्रथम उसका दास, दूसरा

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी

उसका चारवाहा, तीसरा उसका पारिवारिक मित्र और चौथा उसका किसान। शूद्र खान–पान के बंधन से भी मुक्त थे और विवाह में भी गोत्र या प्रवर का कोई बंधन नहीं था। हारीत को उद्धृत करते हुए लक्ष्मीधर ने यह मत व्यक्त किया है कि विशुद्ध मस्तिष्क का शूद्र निकृष्ट दुर्नामी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य से उत्तम है। आर्थिक दृष्टि से देखें तो भी उनकी स्थिति प्राचीनकाल की अपेक्षा उन्नतदशा में थी। इब्नेखुर्दजबा और अल–इद्रीसी का मानना है कि शूद्र का प्रधान कर्म खेती करना था। शैव और जैन मतावलम्बियों ने शूद्रों के विषय में हीनता के कंलक की चिन्ता न करते हुए उनका स्वागत ही किया। अनेक सिद्धाचार्य और तान्त्रिक गुरू शूद्र हुये। बिजौलिया अभिलेख के अनुसार सज्जन जो एक कुम्भकार था, चित्तौड़गढ़ का गर्वनर नियुक्त कर दिया गया। वे कभी सेनापति के रूप में तो कभी मंत्री के रूप में नियुक्त हुए। शुक्राचार्य के अनुसार विजयेच्छ राजा को अपनी सेना में अथवा युद्ध स्थल में शूद्र सैनिकों को नियुक्त करना चाहिए। इसके अतिरिक्त शूद्र भूमि की सिंचाई कर सकते थे और व्यापार भी कर सकते थे। वृहस्पति के अनुसार वे शिल्पकार्य भी कर सकते है, यदि वे चाहे तो उन्हें बेच भी सकते है। पराशर स्मृति शूद्रों को नमक, शहद, घी, तेल, दूध आदि बेचने की आज्ञा देती है।

शूद्रों के शैक्षणिक उन्नयन के प्रमाण भी मिलते है। बंगाल में हमें पपिया नामक एक कैवर्त के गंगा की प्रंशसा में स्तुति करने की जानकारी मिलती है। धोयी एक (तन्तुवाय) का, सेन शासक लक्ष्मणसेन के दरबार में कवि होना और पवनदूतम् की रचना करना शूद्रों के बौद्धिक और सामाजिक उत्कर्ष के प्रमाण है। मेधातिथि और विश्वरूप ने तो शूद्र को अध्यापक होने की स्वीकृति भी दी है। शूद्र वेद को छोड़कर नाना प्रकार के ज्ञान, विज्ञान, व्याकरणशास्त्र एंव शिल्पकला का प्रध्यापक हो सकता था। इस काल में व्यक्ति के श्रम और गुणों को महत्व दिया जाने लगा। आर्थिक स्वावल्मबन और सामाजिक प्रतिष्ठा की भावना ने अपने–अपने कार्य में दक्षता हासिल करने हेतु उन्हें प्रेरित किया।

पूर्व मध्यकाल में जातियों का सर्वाधिक बहुगुणन शूद्रों में हुआ। यादव प्रकाश की वैजयन्ती और हेमचन्द्र की अभिधानचिन्तामणि से शूद्र जाति की सख्या में भारी वृद्धि का अनुमान लगाया जा सकता है। इन्हें 'अन्त्यज' कहा जाता था, अर्थात्– अस्पृश्य जाति। पेशे और आचार की शुद्धता के आधार पर वे दो भागों में बाँट दिये गये। सत् शूद्र और असत् शूद्र। सामंतवादी व्यवस्था के विकास के कारण शूद्रों में कृषक, खेतिहर मजदूर, विभिन्न व्यवसायिक श्रेणियों के सदस्य भी जो कि अपने अपेक्षाकृत शुद्ध व्यवसाय के कारण अन्त्यज की श्रेणी में नहीं नहीं थे। वैश्यों का निम्न वर्ग भी शूद्र समुदाय में सम्मिलित मान लिया गया। भूमिहीन और कम भूमि रखने वाले वैश्य भी शूद्रों में माने गये। ये सत् शूद्र की श्रेणी में माने गये। दूसरी ओर वे जातियाँ थी जो अपने

अशुद्ध पेशे और आचरण के कारण असत् शूद्रों की श्रेणी में मान लिये गये। ये जातियाँ अस्पृश्य थी। कथासरित्सागर में निम्नकोटि, असभ्य एंव जंगली अन्त्यज जातियों का उल्लेख है। जैसे– शबर, पुलिन्द, भील, निषादराज, नापित, (वेश्याओं का शिक्षक) बढ़ई, तन्तुवाय, (जुलाहा) धीवर, व्याध्र, डोम्ब आदि। अलबीरूनी ने भी इन अन्त्यज जातियों को दो वर्गों में बाँटा है, उच्च और निम्न। उच्च जाति में 8 वर्ग है, धोबी, मोची, बुनकर, मदारी, माझी, मछुआरा, टोकरी तथा ढाल बनाने वाले, पशु–पक्षी हिंसक। दूसरे वर्ग में 4 वर्ग है, हाड़ी, डोम, चाण्डाल, बधतौ।

सामंतवादी व्यवस्था के अर्न्तगत पुरोहितों को जब भूमि अनुदान किया गया तो स्थानीय जनजातियाँ को ब्राह्मण अपनी संस्कृति में ले आये। उन ब्राह्मणों ने उन्हें अपनी भौतिक संस्कृति के तौर तरीक सिखाते हुए उन निरक्षर लोगों को न केवल नई भाषा और कर्मकाण्ड सिखाया वरन् उन्हें हल से खेती, नई फसल, मौसम, पशुधन की रक्षा आदि से भी अवगत कराया होगा किन्तु, उन्हें कभी भी अपनी ब्राह्मणिक व्यवस्था में समान स्थान नहीं दिया। ब्राह्मणों के लिए ये अस्पृश्य थे। ये सभी सामान्यतः गाँव के बाहर टीलों पर रहते थे। उपरोक्त अछूत जातियों को ब्राह्मणिक व्यवस्था में समान स्थान नहीं दिया गया। यहाँ तक कि चाण्डाल के दर्शन करने या उसकी छाया तक पड़ने पर प्रायश्चित का विधान कर डाला। पराशर के अनुसार चाण्डाल को देखने पर सूर्य दर्शन से शुद्धि हो जाती है।

पूर्वमध्य काल के इस विश्रृंखलित राजनीतिक वातावरण और सामाजिक अंसतोष की स्थिति के वातावरण ने निम्नवर्गीय शूद्रों को ब्राह्मणवादी समाज के विरूद्ध क्रांति करने को तैयार कर दिया और इसी समय इस्लाम के आगमन ने इस क्रांति को करने में उत्प्रेरित किया। इस्लाम के समानता और भातृत्व की प्रबल भावना ने समाज की रूढ़िवादी विचारधाराओं से ग्रसित, समाज के इस दलित वर्ग की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति में विकास हुआ। समाज के उच्च वर्णों का लगातार बढ़ता हुआ सामाजिक दबाव, अन्याय, विषमता ने उन्हें क्रांति करने को प्रेरित किया। इसी के परिणामस्वरूप कई शूद्र वर्ण के लोगों ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। दिनकर का मानना है कि मुसलमानों के आने से पहले इस देश में एक ऐसी श्रेणी विद्यमान थी, जो ब्राह्मणों से सन्तुष्ट नहीं थी और वर्णाश्रम के नियमों की कायल नहीं थी। बौद्धों, शाक्तों, शैवों का एक बहुत बड़ा समुदाय ऐसा था, जो ब्राह्मण और वेद की प्रधानता को नहीं मानता था। नाथपंथी और सिद्धयोगी भी ब्राह्मणों के विरोधी थे। गोरखनाथ की सिद्ध हठयोग साधना ईश्वरवाद को लेकर चली थी। उन्होनें वेदशास्त्र का अध्ययन व्यर्थ ठहराकर विद्वानों के प्रति अश्रद्धा प्रकट की है, तीर्थाटन आदि निष्फल कहे गये है। संदेशरासक का कवि अब्दुलरहमान आम जनता से निवेदन करते हुए कहता है कि 'जो व्यक्ति न पण्डित हो, न मूर्ख हो, ब्लकि मध्य के हो, वे इसे पढ़े, कारण कि अपने को विद्वान मानने के कारण तथा असंस्कृत भाषा (अपभ्रंश) में

रचित होने के कारण वे (ब्राह्मण) इसे निम्नकोटि का समझेगें और अज्ञानी अज्ञान के कारण इसमें प्रवेश नहीं करेगें।'

जिससे यह बात स्पष्ट होती है कि तत्कालीन समाज में ब्राह्मणों के प्रति निम्न जनता में असंतोष था। अगर देखा जाय तो मुसलमानों के आगमन से पूर्व ही, इस देश में बहुत से हिन्दू, वर्णाश्रम–धर्म को छोड़ एक ऐसी जगह पर जा खड़े थे, जहां वर्णाश्रम का कोई प्रभाव नहीं था। ऐसे विश्वास वालों का जब इस्लाम से सामना हुआ तो आश्चर्य की बात नहीं रही होगी कि उन्हें हिन्दुत्व की अपेक्षा इस्लाम ही अधिक अनुकुल दिखाई पड़ा हो। इस्लाम के पूर्व बौद्ध धर्म के प्रभाव से समाज का एक बड़ा वर्ग जात–पात का विरोधी हो चुका था और कालान्तर में जब मुसलमान प्रथम बार इस देश में आये तो नाना कारणों से दो प्रतिद्वन्दी धर्मसाधनामूलक दलों में यह देश विभक्त हो गया। वास्तव में, बौद्ध मतावलम्बियों की स्वावाभिक परिणति या तो अद्वैतवादी हिन्दू संप्रदायों में होती थी अथवा इस्लाम में। इस्लाम का प्रभाव समाज के इस निम्न वर्ग पर कितना था, इसे दर्शाने के लिए ही रमाई–पड़ित ने 'शून्य–पुराण' नामक ग्रंथ की रचना की। रमाई पड़ित का समय 11वीं शताब्दी माना जाता है। शून्य–पुराण का कवि इस्लाम को धर्म–रक्षक के रूप में देखता है।

इस्लाम के इस बढ़ते प्रभाव को निष्क्रिय करने के लिए ही ऐसे स्मृति ग्रन्थों का प्रणयन किया गया जिसमें उन हिन्दुओं को पुनः हिन्दू धर्म में वापस लाने का विधान किया गया जिन्हें बलात् इस्लाम धर्म स्वीकार कराया गया था। देवल स्मृति उन्हीं में से एक है। देवल ने इस धर्म–परिवर्तन का विधान बताया है। उसके लिए उंन्होनें प्रायश्चित विधान बतलाया है। इसके पूर्व किसी भी धार्मिक ग्रन्थ में परधर्म स्वीकृत वर्ण को पुनः हिन्दू वर्ण–व्यवस्था में लाने का विधान नहीं था। 10वीं 11वीं शताब्दी में भारत के उत्तर पष्चिम क्षेत्र जैसे मुल्तान, सिंध, पंजाब, मंसूर, अलोर, नैरूं आदि में न जाने कितनी निम्नवर्गीय जातियों ने इस्लाम स्वीकार किया। वे सिंध से ब्रह्मपुत्र तक, इस्लाम में दीक्षित हो गये। विद्धानों का मानना है कि इस्लाम की प्रजातान्त्रिक सामाजिक व्यवस्था, जिसने निम्नजातीय हिन्दुओं को सामाजिक स्वतन्त्रता की वास्तविक परिभाषा बतलायी, उसने निम्नजातीय हिन्दुओं को वर्ण–व्यवस्था की परतंत्रता की बेड़ी को काटने को मजबूर कर दिया। इस्लाम को स्वीकारने का सीधा अर्थ इस निम्नता से मुक्ति थी।

शूद्र वर्ण का इस्लाम की ओर बढ़ने का कारण वर्ण–व्यवस्था का निम्नजातीय वर्ग के प्रति सामाजिक अन्याय तो था ही, साथ ही साथ कुछ आर्थिक कारण भी उत्तरदायी थे। मत–परिवर्तन से हिन्दू समाज के इन जातियों को मुस्लिम समाज और क्षेत्र में रोजगार और आर्थिक उन्नति के अवसर मिल रहे थे। प्रो0 हबीब का मत है कि धर्म परिवर्तन बहुत कुछ व्यवसायिक दृष्टि से भी हुआ। कसाईयों,

महावतों तथा जुलाहों में धर्म परिवर्तन अधिक हुआ। हलवाई, पान उपजाने वाले तथा धातुओं का काम करने वाले अपना काम हिन्दू तथा मुसलमान दोनों तरीके से कर सकते थे। अतः उनका धर्म उनके लिए लाभप्रद रहा।

इस प्रकार कुछ निम्न जातीय हिन्दू वर्ग जो इस्लाम स्वीकार कर रहे थे, उसका मूल कारण भारतीय वर्ण–व्यवस्था की संर्कीणता या अस्पृश्यता की भावना ही नहीं, वरन् मुस्लिम समाज में प्राप्त नये व्यवसाय और अवसर भी थे। इस प्रकार के मत–परिवर्तन मुख्यतः नगरीय क्षेत्रों में हुए, क्योंकि विजेता मुख्यतः नगरों में ही रहते थे और उनका आंतक भी प्रधानतः वही था। स्पष्टतः यह कहा जा सकता है कि उच्च शूद्रों की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन हो रहा था किन्तु उन्हीं शूद्रों का एक वर्ग जातीय बंधनों से मुक्त होने हेतु इस्लाम की ओर आर्कषित हो रहा था। जिसमें उन्हें सफलता भी मिल रही थी। यह देखकर वर्णाश्रम धर्म के संरक्षक विचलित भी हुए और उन धर्म परिवर्तित हिन्दुओं को वापस अपने धर्म में लाने के लिए कई विधान तक करने लगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. सचाऊ, अलबीरूनी इण्डिया, जि0 2, पृ0 136
2. मेधा0, 3:156; 8:415
3. अपरार्क टीका (याज्ञ0) 1:60–62; सचाऊ, वही, जि0 1, पृ0 103
4. कृ0 क0 त0, गृहस्थकाड़, पृ0 356, 336
5. प्रतिपाल भाटिया, द परमाराज, दिल्ली, 1970, पृ0 281
6. दशरथ शर्मा, राजस्थान थ्रू द एजेज, जि0 1, बीकानेर, 1966, पृ0 435
7. शुक्र0 2:140 यथा–शूद्रा वा क्षत्रिया वैश्या म्लेच्छा संकर संभवः। सेनाक्षिप सैनिकाश्च कार्या राजा जयार्थिनः।।
8. वृहस्पति, 5:530 प0 304
9. परा0,1:68
10. पवनदूतम्, संपा0 चिन्ताहरन चक्रवर्ती, भूमिका, पृ0 5; बी0 पी0 मजूमदार, सोशियों इकोनामिक हिस्ट्री आफ नार्दन इण्डिया 1030–1194 ई0, कलकत्ता, 1960, पृ0 111
11. मेधा0, 3:67, 121, 156. 10, 127; विश्वरूप (याज्ञ0), 1:13; एस0 एन0 प्रसाद, वही, पृ0 91
12. क0 स0 सा0 9:74 यथा– हरिणाखेटके जातु भ्राम्यन्नुदयोऽव सः। शबरेण हठाक्रान्तमटव्यां सर्पमैक्षत।।
13. जे0 एस0 मिश्रा, ग्याहरवीं सदी का भारत पृ0 122–3
14. परा0 6:24

15. रामचन्द्र शुक्ल, भारतीय साहित्य का इतिहास, नागपुर, संवत् 2005, पृ0
16. अब्दुलरहमान, संदेशरासक संपा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी और विश्वनाथ त्रिपाठी, यथा–णहु रहई बुहह कुकुवित रेंसु। अबुहतणि अबुतहणहु पवेसु।। जिण मुक्ख ण पंडिय मन्झयार। तिह पुरउ पठिहवउ सत्वार।।प्रथम प्रक्रम।। श्लोक सं0 20–21।। पृ0 113–4
17. दे0 स्मृति, यथा– सिन्धुतीरे सुखांसीन देवल मुनिसत्तमम्। समेत्य मुनयः सर्वे इंद बचनमब्रुवन।।1।। भगन्म्लेच्छनीता हि कंत शुद्धिम वाप्नुयः। ब्राहणाः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्राष्चैवानुपूर्वषः।।2।।
18. इलिएट एण्ड डाउसन, हिस्ट्री आफ इण्डिया एज टोल्ड बाई इटस ओन हिस्टोरियन्स जि0 1, भूमिका, पृ0 56–7

*****